भारतीय संस्कृति का बदलता स्वरूप और पर्यावरण प्रदूषण

ब्रजेश सिंह[1], वर्षा रानी[2] एवं संतोष कुमार सिंह[3]
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, भदोही–221401, उ0प्र0, भारत
[2]असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, भदोही–221401, उ0प्र0, भारत
[3]असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान, जयनारायण पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
santoshsinghjnpg@gmail.com

प्राप्त तिथि–31.07.2015, स्वीकृत तिथि–10.10.2015

पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। मनुष्य इसी पर्यावरण की सर्वोत्कृष्ट कृति है। प्रकृति और मनुष्य परस्पर पूरक हैं। मनुष्य जैसे प्राकृतिक परिवेश में रहता है, उसका व्यवहार, रहन–सहन, वेशभूषा, खानपान, भाषा इत्यादि उसी के अनुसार विकसित होती है। यथा– गर्म प्रदेश में रहने वाले मनुष्य सूती वस्त्र पहनते हैं, ये वस्त्र कपास से बनते हैं और कपास की खेती योग्य भूमि गर्म प्रान्तों में पाई जाती है। इसी प्रकार ठण्डे प्रदेशों के लोग ऊनी वस्त्र पहनते हैं। यह ऊन ठण्डे जलवायु के जानवरों(याक, भेड़) के बालों से बनती है। तात्पर्य यह है कि किसी भी देश की संस्कृति उसके पर्यावरण पर निर्भर करती है। यदि पंजाब प्रान्त में लोग गेहूँ अधिक खाते हैं तो उसका स्पष्ट कारण है कि वहाँ की भूमि गेहूँ की खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसी प्रकार बंगाल में चावल की उपज अधिक होने के कारण बंगाली लोग चावल अधिक खाते हैं। यदि भाषा का व्याकरणिक अध्ययन किया जाय तो भाषा भूगोल के अनुसार अलग–अलग जलवायु के लोगों की भाषा भी भिन्न–भिन्न होती है।

हमारी भारतीय संस्कृति इन तथ्यों से भली भांति अवगत है। इसीलिए हमारी संस्कृति में प्राकृतिक शक्तियों को देवी देवताओं का स्थान प्राप्त था और इनकी पूजा की जाती थी। मिट्टी को मातृ देवी, वायु को देवता और जल को पवित्र देवी, अग्नि को देवता कहा जाता था। भारतीय लोक संस्कृति तो पूर्णतः प्रकृति परक है। यहाँ का ग्राम्य जीवन प्रकृति से अत्यधिक प्रेम करता है। भारत गाँवों का देश है और भारतीय संस्कृति कृषक संस्कृति कहलाती है। यहाँ के किसान अपनी धरती से अत्यधिक लगाव रखते हैं। यहाँ की उपजाऊ भूमि में मौसम के अनुसार फसलें, फलों के वृक्ष, पुष्प आदि उगाए जाते हैं। अर्थात खेती पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर है। यहाँ ऋतु गीत गाये जाते हैं। रोग ग्रस्त होने पर पेड़, पौधों, वनस्पतियों से भांति–भांति की औषधियां प्रयोग में लायी जाती हैं। जैसे– खांसी आने पर तुलसी दल का काढ़ा, चोट लगने पर हल्दी का लेप, चेचक होने पर नीम की पत्ती का रखना, दुग्ध पान कराने वाली माताओं को पीपर, सतावर खिलाना आदि।

"कपिला के दूध पिलायो, बाबुल नहलायों, झारी पिताम्बर ओढायो, लाल के सोआयो।
लाल क लुटुर लुटुर बरवा बहुत नीक लागे, बहुत छवि लागे ए हो !
माइ नी गूंथे जसोमति मने मन बिहंसें...।"

बदलते वैज्ञानिक युग में शनैः–शनैः हमारी संस्कृति का स्वरूप बदलता जा रहा है। गाँव नगरों में बदल रहे हैं, नये–नये कल कारखाने, उद्योग, मिलें, फैक्ट्रियां स्थापित किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक तकनीकों से बेमौसम कृत्रिम फसलें, फल आदि उगाए और पकाए जाने लगे हैं। पाश्चात्य आधुनिक संस्कृति प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूल रूप को बदल रही है। भारत विकास कर रहा है। यहाँ विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण ऊँची–ऊँची इमारतें, बड़े–बड़े उद्योग ग्रामीण संस्कृति में प्रयुक्त छोटे–छोटे उपकरणों(खुरपी, कुदाल, हल), सनई से बने झोपड़ियों और हस्त शिल्प के छोटे–छोटे उद्योगों को विस्थापित कर रहे हैं। लोक गीतों के स्थान पर पाश्चात्य पॉप गायन, लोक नृत्य के स्थान पर डिस्को का प्रचलन बढ़ गया है। अब शायद ही कोई बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी या साइकिल से चलता हो, इनका स्थान पेट्रोल और डीजल से चलने वाली तेज रफ्तार गाड़ियों ने ले लिया है। इस प्रकार भारत विकासशील है, किन्तु यह विकास जिसने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया है, हमारे पर्यावरण को भी प्रभावित कर रहा है। ग्यातव्य है कि भारतीय संस्कृति और पर्यावरण परस्पर आश्रित हैं। यहाँ का किसान ऋतुओं के अनुसार फसलें बोता, उगाता और काटता है। स्त्रियां बोवाई, कटाई के गीत गाती हैं।

"बादल बरसे बिजुरी चमके, जियरा ललचे मोर सखिया।
सइंया घर ना अइले पानी बरसे लागल मोर सखिया।।"[1]

यहाँ ऋतु संबंधी गीत– कजली(सावन मास में), फगुआ(फागुन मास में), चैता(चैत्र मास में), और पावस ऋतु में बारहमासा गाए जाते हैं। वाद्य यंत्रों में बांसुरी जो बांस से निर्मित होती है, वीणा जो वृक्ष के तने से निर्मित होती है, आदि प्रमुख वाद्य यंत्र हैं। वस्तुतः भारतीय लोक संस्कृति में प्रकृति वैसे ही समाहित है, जैसे– शरीर में आत्मा। हरे–भरे खेतों में लोग काम करते हैं, आम के पेड़ों के नीचे बैठकर ये रखवाली करते हैं। महुआ के पेड़ से कोइना एकत्र कर अंधेरे में घर में प्रकाश का प्रबंध करते

हैं। घर के आंगन में बोई गई 'जमिरिया की गछिया' उन्हें आनन्द देती है। चन्दन का पेड़ सुगन्ध बिखेरता है। रावना और महुआ के फूल शीतला माता की पूजा के लिए खिले हुए दिखाई पड़ते हैं। तुलसी का पेड़ तो ग्रामीण स्त्रियों का चिर साथी है। हमारी संस्कृति में विवाहिता स्त्री को चंदन और लवंग के वृक्षों की लकड़ी से बने पलंग, लोहे और स्टील के बने पलंग से अधिक सुहावने लगते हैं। वे गाती हैं–

" मोरे पिछुवरवा लवंगिया की बगिया, लवंगा फूले आधी राति रे।
तेहि तर उतरे दुलही दुलरवा, तरहिं लवंगिया के फूल रे।।"[2]

प्रकृति में रची बसी यह लोक संस्कृति धीरे–धीरे विलुप्त हो रही है। हम प्रकृति से कोसों दूर ईंट पत्थरों की दुनिया में प्रवेश कर गये हैं। आधुनिक समाज प्रकृति से प्रेम नहीं, उसका दोहन करना जानती है। कम्प्यूटर युग कहे जाने वाले आज के समय में हमारी संस्कृति प्राकृतिक से कृत्रिम हो गयी है। विकास की दौड़ में हम पर्यावरण को शुद्ध रचाने वाली भारतीय संस्कृति के क्रियाकलापों(हवन, यज्ञादि) से हटकर प्रकृति को दूषित करने वाली संस्कृति(प्लास्टिक को जलाना, नदियों में अपशिष्ट बहाना, पेट्रोल, डीजल चालित वाहनों का प्रयोग) को अपना रहे हैं। प्रदूषण का अर्थ है– पर्यावरणीय असंतुलन, और इस असंतुलन का कारण है हमारी बदलती संस्कृति। आधुनिक विकासशील भारत की उपभोक्तावादी संस्कृति में पर्यावरण प्रदूषण के निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उल्लिखित हैं–

1. वनों को काटकर उनके स्थान पर फैक्ट्रियाँ, मिलें, औद्योगिक प्रतिष्ठानों का निर्माण तथा वृक्षों का समुचित मात्रा में पुनः रोपण न करने से वृक्षों की कमी हो रही है। इससे वायु मण्डल में वृक्षों से प्राप्त ऑक्सीजन की कमी, भूमि की उर्वरता में कमी, बाढ़ का खतरा और वर्षा की कमी जैसी स्थितियां उत्पन्न हो रही हैं।
2. तेज रफ्तार वाहनों से विकास की गति बढ़ी है, हम अगम्य सुदूर स्थानों तक बड़ी आसानी से कम समय में पहुँचने लगे हैं। देशों की दूरियां कम हुई हैं। किन्तु दूसरी तरफ वाहनों में प्रयुक्त पेट्रोल, डीजल से निकलने वाला धुआँ पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। इस धुएँ से लेड और कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसें हमारी त्वचा, नेत्र, फेफड़ों को विकारग्रस्त कर रही हैं। आकाश में उड़ने वाले हेलीकॉप्टर और हवाई जहाज एक ओर हमें अतिशीघ्र अधिक दूरी तक पहुँचा देते हैं और समय की बचत, कार्य गति बढ़ती है तो दूसरी ओर इनके ईंधन से निकलता धुँआ आकाशीय वायुमण्डल को प्रदूषित कर देता है।
3. वातावरण को नियंत्रित करने वाले यंत्र रेफ्रीजरेटर, ए.सी. आदि में क्लोरो फ्लोरो कार्बन नामक कृत्रिम गैस प्रयुक्त होती है। कारखानों(शीतगृह) में उपयोग के बाद इसका एक चौथाई भाग अपशिष्ट के रूप में वायुमण्डल में घुल जाता है, और ओजोन गैस के क्षरण का कारण बनता है। ओजोन की परत सूर्य की हानिकारक किरणों को पृथ्वी तक आने से रोकती है। इनके क्षरण से ये किरणें पृथ्वी के जीव जन्तुओं, पेड़–पौधों आदि को नुकसान पहुंचा सकती हैं। इसी कारण से पृथ्वी का तापमान भी बढ़ने लगा है।
4. आधुनिकतावादी संस्कृति में औद्योगिक कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट, भारी धात्विक पदार्थ(पारा, सीसा, जस्ता, तांबा आदि) का रसायनिक कचरा नदियों में बहाया जाता है। अपनी शारीरिक स्वच्छता के लिए उपयोग में लाए गये साबुन, डिटर्जेंट, घर की नालियों की साफ सफाई में प्रयुक्त कीटनाशक, खेतों में प्रयुक्त उर्वरक, मलमूत्र, कचरा, मृत शरीर आदि का निष्कासन नदियों में किया जाता है, जिससे उसका जल प्रदूषित हो जाता है। जिस नदी को पवित्र कहकर हम तीज त्यौहारों पर उसकी आरती पूजा करते हैं, उसी में साबुन, डिटर्जेंट, पॉलीथीन, फूल, बोतल, आदि बहाकर क्या हम पाप के भागी नहीं बन रहे है?
5. वैज्ञानिक विकास ने प्लास्टिक की थैलियां, बोतल जैसे कभी नष्ट न होने वाले संसाधन तो उपलब्ध करा दिए, किन्तु इनके कचरे के दुष्परिणामों पर विचार नहीं किया। मिट्टी में इकट्ठा होकर ये नष्ट न होने वाले कचरे मृदा के सूक्ष्म जीवों(भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाले बैक्टीरिया) का विनाश कर रहे हैं। इन्हीं कारणों से भूमि का ताप और दाब बढ़ने लगा है। यह ज्वालामुखी विस्फोट तक का कारण बन सकता है।
6. नगर और कारखानों के प्रदूषित जल, अपशिष्ट, कूड़ा आदि खाली भूमि में बहा दिया जाता है इसमें निहित रसायन, धातु, ताप, विषैली गैसें आदि मृदा में प्रवेश कर जाती है और कृषि योग्य उर्वरा भूमि भी बंजर हो जाती है।
7. पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से तीव्र ध्वनि से बजने वाले वाद्य यंत्रों, चीखते स्वर में लाउडस्पीकर, माइक, इलेक्ट्रॉनिक वूफर साउण्ड वाले बड़े–बड़े स्पीकर आदि संयंत्रों में गाये जाने वाले गीतों, वाहनों के हार्न आदि से ध्वनि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण से बहरापन, दिल का दौरा, दिमागी बिमारियां जैसे माइग्रेन, अनिद्रा, कार्यक्षमता में ह्रास आदि का खतरा बढ़ रहा है।[3]

इस प्रकार भारतीय लोक संस्कृति आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति में परिवर्तित होकर पर्यावरण प्रदूषण का कारण बन गयी है। कामायनी जैसा महाकाव्य लिखकर कवि जयशंकर प्रसाद ने मानव संस्कृति को पर्यावरणीय असंतुलन के प्रलयंकारी दुष्परिणामों के प्रति बार–बार सचेत किया है–"यदि हम इसी प्रकार प्रकृति का दोहन करते रहे तो एक दिन देव संस्कृति की भांति यह मानव संस्कृति भी प्रकृति के कोप का भाजन बन जाएगी.....................

'आह! सर्ग के अग्रदूत! तुम असफल हुए विलीन हुए
भक्षक या रक्षक जो समझो, केवल अपने मीन हुए
/ /
देव दम्भ के महामेघ में सब कुछ ही बन गया हविष्य
अरे अमरता के चमकीले पुतलों तेरे वे जयनाद
कांप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बनकर मानों दीन विषाद
प्रकृति रही दुर्जेय पराजित हम सब थे भूले मद में
भोले थे हा! थ्तरते केवल सब विलासिता के नद में
वे सब डूबे, डूबा उनका विमव, बन गया पारावार
उमड़ रहा था देव सुखों पर दुःख जलाधि का नाद अपार।
/ / / / / / / / / / / / / / / / / / / /
शक्ति रही हा! शक्ति प्रकृति थी पदतल में विनम्र विश्रांत
कँपती धरती उन चरणों से होकर प्रतिदिन ही आक्रन्त
स्वयं देव थे हमसब तो फिर क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि
/ /
भरी वासना सरिता का वह कैसा था मदमत्त प्रवाह
प्रलय जलधि संगम जिसका देख हृदय था उठा कराह।।''[4]

अतः हमें उस अपसंस्कृति से बचना होगा जो प्रकृति का दोहन करना जानती है और उस भारतीय संस्कृति को विलुप्त होने से बचाना होगा जिसमें प्रकृति प्रेम कूट–कूट कर भरा है। यह तभी संभव है जब हम अपने पर्यावरण को स्वच्छ और संतुलित रखें। जितना हम विकास के लिए प्रकृति से लेते हैं, उतना ही हमें देना भी होगा। यदि हम वनों को काटकर औद्योगिक प्रतिष्ठान बना रहे हैं, तो उसी अनुपात में वृक्षारोपण भी करना होगा। वाहनों से निकलने वाले धुओं को प्रदूषण मुक्त बनाना होगा। मृदा प्रदूषण को रोकने के लिए प्लास्टिक बैग, थैलों और बोतलों का प्रयोग बंद करना होगा। कृत्रिम वर्षा, परमाणु बम, आदि विस्फोटक हथियारों का निर्माण और प्रयोग रोकना होगा। वैज्ञानिक प्रयोगों में प्रकृति के साथ होने वाले खिलवाड़ को बंद करना होगा।

संदर्भ

1. कृष्णदेव, उपाध्याय(2002) भोजपुरी ग्रामगीत, भाग–1, पृ0 334।
2. त्रिपाठी, रामनरेश(1999), ग्रामगीत, पृ0 69।
3. सिंह, परमेश्वर(2001) प्रकृति, मानव एवं पर्यावरण, पृ0 80।
4. प्रसाद, जयशंकर(1993) कामायनी, चिंता सर्ग, पृ0 17।